

अमृत विचार

रंगोली



वर्द्धन वंश ने दिया संरक्षण

सामान्यतः पुतलों का प्रयोग हमारे देश के किसान अपने खून-पसीने की कमाई फसल की रक्षा के लिए करते हैं। अपनी चुनी हुई सरकार, चुने हुए जनप्रतिनिधियों के खिलाफ अपने आक्रोश को अभिव्यक्त करने के लिए जनता द्वारा पुतला दहन का कार्यक्रम आमतौर पर देखा जा सकता है। हर वर्ष दशहरा के अवसर पर रावण का पुतला दहन करने का रिवाज सदियों पुराना है। परंतु पुतला के माध्यम नाट्यकला कौशल का उल्लेख ईसापूर्व चौथी शताब्दी में पाणिनी कृत अष्टाध्यायी के नटसूत्र में मिलता है। एक पौराणिक मान्यता के अनुसार भगवान शिव ने काठ की मूर्ति में प्रवेश कर पार्वती जी का मन बहलाकर इस नाट्यकला को शुरूआत किया था। सिंहासन बत्तीसी में भी विक्रमादित्य के सिंहासन की बत्तीस पुतलियों का उल्लेख मिलता है। यह सर्वविदित तथ्य है कि राजतंत्रिय परंपराओं में हर कला का विकास राजमहलों की अनुकंपा पर निर्भर था। भारत वर्द्धन वंश के शासकों ने कठपुतली नाट्यकला को संरक्षण और प्रश्रय दिया। वर्द्धन वंश के शासकों के शासन काल में इस कला का फैलाव भारत से पूर्वी एशिया के देशों इंडोनेशिया, थाईलैंड, म्यान्मार, जावा श्रीलंका इत्यादि में हुआ।

इंसानियत सिखाती कठपुतलियां



संरक्षण के लिए समाज की जागरूकता जरूरी

पारंपरिक भारतीय कठपुतली नाट्यकला में पौराणिक कथाओं, मिथकों और कहानियों जैसे अमर सिंह राठौड़, पृथ्वीराज, लैला मजनूं, शोरी फरहाद तथा भारतीय इतिहास के विभिन्न कालखंडों के महापुरुषों राजा हरिश्चंद्र, भक्त पूरन मल, श्रवण कुमार, भृत्हरि, सती-सावित्री इत्यादि के चरित्र को आधार बनाकर मंचन किया जाता था। आज इसका समासमयिक प्रयोग प्रौढ़ शिक्षा, परिवार नियोजन, विज्ञान इत्यादि में किया जाता है। उत्तर भारत में राजस्थान में कठपुतली नाट्यकला आज भी लोकप्रिय है। लोक जागरण के सशक्त माध्यम कठपुतली नाट्यकला को फिर से व्यापक, विस्तारित और लोकप्रिय बनाने की आवश्यकता है।

साहित्यकार मुंशी प्रेमचंद की माटी के सपूत राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से प्रशिक्षित उत्कृष्ट रंगकर्मी श्री मिथिलेश दुबे अपनी संस्था क्रिएटिव पपेट थिएटर के माध्यम से 'मोहन से महात्मा' कठपुतली नाट्य कला का देश के विभिन्न हिस्सों में मंचन करते आ रहे हैं। मिथिलेश दुबे जी विगत आठ वर्षों से कठपुतली नाट्य कला पर गंभीरता से कार्य कर रहे हैं। मिथिलेश दुबे जी स्वाधीनता आंदोलन के नायकों के व्यक्तित्व पर आधारित कथानक तैयार कर कठपुतली नाट्य कला का मंचन देश के विभिन्न शहरों में करते आ रहे हैं। इसके अतिरिक्त प्रौढ़ शिक्षा, परिवार नियोजन, नारी सशक्तिकरण,

पर्यावरण संरक्षण से संबंधित विषयों पर कथानक तैयार कर मंचन का कार्य करते हैं। जिन सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय समस्याओं को लेकर देश के अधिकांश बुद्धिजीवी बहस करते हैं। इन समस्याओं को कठपुतली नाट्य कला के माध्यम से हम जनमानस को सहजता से समझा सकते हैं। इस तरह कठपुतली नाट्य कला के माध्यम से देश की विविध समस्याओं के प्रति जनमानस को जागरूक कर सकते हैं। इसके साथ कठपुतली नाट्य कला के माध्यम से स्वस्थ मनोरंजन के साथ-साथ अपने समाज के नैतिक मूल्यों, आदर्शों और मर्यादाओं को समाज स्थापित, विस्तारित, व्यापक और मजबूत कर सकते हैं। इस नाट्यकला के माध्यम से भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों, कुप्रथाओं और असंगत रूढ़ियों को दूर किया जा सकता है। वैसे तो कठपुतली नाट्य कला का फैलाव प्रशांत महासागर के पूर्वी छोर से पश्चिमी छोर तक पाया जाता है, परंतु आधुनिक दौर में भारत में यह कला बेहद संकट के दौर से गुजर रही है।

कठपुतली नाट्य कला को विगत वर्षों में स्कूल इंडिया कार्यक्रम से जोड़ा गया है, जिसके माध्यम से कलाप्रेमी युवाओं को रोजगार के बेहतर अवसर उपलब्ध कराया जा सके। कठपुतली नाट्य कला को संरक्षित करने के लिए जन जन में जागरूकता लाई जाए तथा स्वस्थ सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश निर्मित किया जा सके।

आदिम काल से लेकर आज तक मनुष्य अपने फुर्सत के समय में किसी न किसी तरह के मनोरंजन के साधनों को अपनाता रहा है। कठपुतली नाट्य कला मनुष्य द्वारा अपनाए जाने वाले साधनों में एक स्वस्थ, संदेशप्रद, शालीन, सभ्य, नैतिकता से ओतप्रोत और मानवीय मूल्यों का बोध कराने वाले मनोरंजन के साधनों के रूप में सदियों से जानी जाती रही है। परंतु आधुनिक दौर में तकनीकी, प्रौद्योगिकी, मशीनीकरण ने हस्तकला आधारित मनोरंजन के साधनों और औजारों को बुरी तरह ध्वस्त कर दिया। तेजी से पांव पसारती उपभोक्तावादी संस्कृति टीवी, फिल्म, वेबसीरिज, तरह-तरह के धारावाहिकों, कानफोडू डीजे क्लब्स के चक्कर और घनचक्कर में लोगों ने कठपुतली नाट्य कला को भूला दिया। मोबाइल और लैपटॉप पर होने वाली चैटिंग और विविध प्रकार के गेमों ने तो कठपुतली नाट्य कला को लगभग हाशिए पर धकेल दिया।



मनोज कुमार सिंह साहित्यकार

कहानी कहने का सहज और आकर्षक माध्यम

कठपुतली नाट्य कला के सिद्धहस्त कलाकार परदे के पीछे से सुतली, धागे या रस्सी के सहारे मंच पर प्लास्टर ऑफ पेरिस की बनी कठपुतलियों पर जब अपनी जादुई उंगलियों को फेरते हैं, तो कठपुतलियां जीते-जागते इंसानों की तरह बोल उठती हैं। मंच पर कठपुतलियों का मनमोहक नृत्य और अभिनय दर्शकों का मन बरबस मोह लेता है। किसी कथा, कथानक और कहानी कहने का सहज सरल और आकर्षक माध्यम है कठपुतली नाट्य कला। नाट्यकला और रंगमंच के इतिहास का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि कठपुतली नाट्य कला स्वस्थ मनोरंजन के सरल, सहज, सशक्त और आकर्षक माध्यम के रूप में अत्यंत प्राचीन काल से विश्व के अधिकांश हिस्सों में व्याप्त रही है। कालक्रमेण कठपुतली नाट्य कला स्वस्थ मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान का समुचित बोध कराने, शिक्षा, सूचना और विचारों के संप्रेषण का माध्यम तथा इससे जुड़े कलाकारों के आजीविका का साधन बन गई। हमारे जनजीवन और लोक मनोरंजन से लगभग मृताप्यः हो रही है। कठपुतली नाट्य कला के माध्यम से शिक्षण कार्य को रोचक बनाया जा सकता है। कुप्रथाओं, कुरीतियों और अन्य सामाजिक समस्याओं को मिटाने के लिए कठपुतली विधा बेहतर माध्यम हो सकती है।



फ्रांस से शुरू हुई दिवस मनाने की परंपरा

कठपुतली नाट्य कला के विकास, संबर्द्धन और सशक्तिकरण को ध्यान में रखकर कठपुतली दिवस मनाने का विचार सर्वप्रथम इंग्लैंड के कठपुतली नाट्य मर्मज्ञ और प्रस्तोता जावेद जोलपाघरी ने प्रस्तुत किया। वर्ष 2000 में मॉडेबुर्ग में 18 वीं Union Internationale de la Marionnette (UNIMA) सम्मेलन के दौरान यह प्रस्ताव विचार हेतु रखा गया। दो वर्ष बाद इस प्रस्ताव को जून 2002 के जून महीने में अटलांटा में काउंसिल द्वारा सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया। सर्वप्रथम फ्रांस में वर्ष 2003 में विश्व कठपुतली दिवस मनाया गया, तब से कठपुतली दिवस मनाने का चलन-चलन संपूर्ण विश्व में फैलने लगा।

शिक्षण में निभा सकती है महती भूमिका

अपनी अद्वितीय संप्रेषण दक्षता और ग्रहणशीलता के कारण कठपुतली नाट्य कला प्राथमिक स्तर तथा उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के लिए शिक्षण-प्रशिक्षण का सशक्त और लोकप्रिय माध्यम हो सकती है। पौराणिक और ऐतिहासिक विषयों के जीवन चरित्र पर आधारित कठपुतली नाट्य कला के प्रदर्शन से चरित्र निर्माण में सहायता मिल सकती है। मनोरंजन के नित नवीन विकसित होते माध्यमों के कारण कठपुतली नाट्य कला लगभग विलुप्त के कगार पर है। इसके साथ ही साथ इसके माध्यम से आजीविका चलाने वाले लोगों के समक्ष

भरण-पोषण का संकट खड़ा हो गया है। नृत्य कला, चित्रकला, मूर्तिकला और संगीत कला को समर्पित किए कठपुतली नाट्यकला भारतीय समाज में अत्यंत प्राचीन काल से चलन-चलन में रही है।



अनोखी परंपरा



पीढ़ियों का विश्वास: राम जन्म कुंडली वाचन

राजस्थान के बीकानेर शहर में एक ऐसी अनूठी धार्मिक परंपरा जीवित है, जो समय के साथ न केवल संरक्षित रही है, बल्कि आज भी लोगों की गहरी आस्था का केंद्र बनी हुई है। तेलीवाड़ा चौक स्थित रघुनाथ मंदिर में पिछले लगभग 125 वर्षों से भगवान श्रीराम की जन्म कुंडली के वाचन की परंपरा निरंतर निभाई जा रही है। यह परंपरा केवल एक धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि स्थानीय सांस्कृतिक विरासत का सशक्त प्रतीक भी है। इस परंपरा की सबसे विशेष बात यह है कि कुंडली वाचन का दायित्व पीढ़ी दर पीढ़ी एक ही परिवार द्वारा निभाया जाता रहा है। वर्षों से चली आ रही इस परंपरा में न केवल धार्मिक अनुशासन दिखाई देता है, बल्कि परिवार की उस निष्ठा का भी परिचय मिलता है, जिसने इसे समय की धारा में बहने नहीं दिया। मंदिर परिसर में स्थापित वीर हनुमान जी की प्रतिमा के समक्ष यह अनुष्ठान विधिवत संपन्न होता है, जहां श्रद्धालु बड़ी संख्या में उपस्थित होकर इसे श्रद्धा के साथ देखते और सुनते हैं। कुंडली वाचन से पूर्व पूरे विधि-विधान के साथ पूजा-अर्चना की जाती है। इसके बाद भगवान को अर्पित प्रसाद को भक्तों में वितरित किया जाता है। प्रसाद के रूप में पंचामृत और पंजीरी का विशेष महत्व है। पंचामृत को दूध, दही, केसर और पंचमेवा से तैयार किया जाता है, जिसकी मात्रा भी इस आयोजन की भव्यता को दर्शाती है। करीब 9 क्विंटल पंचामृत श्रद्धालुओं के बीच बांटा जाता है। यह केवल प्रसाद वितरण नहीं, बल्कि सामूहिक सहभागिता और श्रद्धा का उत्सव बन जाता है। इस परंपरा का महत्व केवल धार्मिक आस्था तक सीमित नहीं है। यह बीकानेर की उस सांस्कृतिक पहचान को भी उजागर करती है, जिसमें परंपराओं को सहेजकर अगली पीढ़ियों तक पहुंचाने का भाव निहित है। बदलते समय और आधुनिक जीवनशैली के बीच भी इस तरह की परंपराओं का जीवित रहना इस बात का प्रमाण है कि समाज अपनी जड़ों से कितना गहराई से जुड़ा हुआ है। इस प्रकार, बीकानेर का यह रघुनाथ मंदिर न केवल एक आस्था का केंद्र है, बल्कि वह स्थान भी है, जहां इतिहास, परंपरा और विश्वास एक साथ जीवंत रूप में दिखाई देते हैं।

रंग, रिश्ते और रिवाजों का जनजातीय उत्सव

गुजरात के उत्तर-पूर्वी अंचल में जब रंग, संगीत और उत्साह एक साथ सजीव हो उठते हैं, तब कवंत का जनजातीय उत्सव अपने पूरे वैभव के साथ सामने आता है। यह केवल एक पर्व नहीं, बल्कि रथवा जनजाति के जीवन, संस्कृति और सामूहिक आनंद का जीवंत उत्सव है, जिसमें परंपरा और उल्लास का अनोखा संगम देखने को मिलता है। कवंत का यह आयोजन दरअसल एक बड़े सामाजिक मिलन का रूप ले लेता है। दूर-दराज के गांवों से लोग सजे-धजे परिधानों में यहां पहुंचते हैं और अपने रिश्तों को नया आयाम देते हैं। इस दौरान विवाह संबंधों पर चर्चा करना एक अहम पहलू होता है, जहां परिवार आपसी सहमति और परंपराओं के अनुसार रिश्तों की नींव रखते हैं। साथ ही, वस्तुओं का आदान-प्रदान भी इस उत्सव का हिस्सा होता है, जो सामुदायिक जीवन की आत्मनिर्भरता और सहयोग की भावना को दर्शाता है। इस उत्सव की सबसे आकर्षक झलक इसके पारंपरिक लोक नृत्यों में देखने को मिलती है। ढोल-नगाड़ों और

लोकायन

लोक वाद्यों की थाप पर युवक-युवतियां जब समूह में थिरकते हैं, तो पूरा वातावरण ऊर्जा और उल्लास से भर उठता है। उनके रंग-बिरंगे परिधान, पारंपरिक आभूषण और लयबद्ध नृत्य इस उत्सव को और भी मनमोहक बना देते हैं। संगीत यहां केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का माध्यम बन जाता है। कवंत की खासियत यह भी है कि यह अब केवल स्थानीय उत्सव नहीं रह गया है। इसकी ख्याति देश-विदेश तक पहुंच चुकी है। हर वर्ष बड़ी संख्या में विदेशी पर्यटक और अनिवासी भारतीय इस अनूठे जनजातीय उत्सव को देखने के लिए यहां आते हैं। उनके लिए यह अनुभव किसी जीवंत सांस्कृतिक संग्रहालय से कम नहीं होता, जहां वे भारत की आदिवासी परंपराओं को करीब से महसूस कर पाते हैं। बदलते समय के बावजूद कवंत अपनी मूल पहचान को सहेजे हुए है। यह उत्सव आज भी उस सरल, सामूहिक और आनंदमय जीवनशैली की झलक प्रस्तुत करता है, जो आधुनिकता की दौड़ में कहीं खोती जा रही है। यही कारण है कि कवंत न केवल एक त्योहार है, बल्कि वह परंपरा, पहचान और समुदाय की एक ऐसी जीवित कहानी है, जो हर साल नए उत्साह के साथ दोहराई जाती है।



आर्ट गैलरी

कला जगत की ताजा खबर यह है कि वैक्सीन उद्योग के अरबपति सायरस पूनावाला ने राजा रवि वर्मा की प्रसिद्ध कृति 'यशोदा और कृष्ण' को 17.9 मिलियन डॉलर (लगभग 1672 करोड़ रुपये) में खरीदकर भारतीय चित्रकला की नीलामी का नया रिकॉर्ड स्थापित किया। यह नीलामी 1 अप्रैल को मुंबई स्थित सैफ्रोनआर्ट में हुई, जहां इस कृति ने अनुमानित मूल्य से कहीं अधिक बोली प्राप्त की और एम. एफ. हुसैन की कृति 'ग्राम यात्रा' को मिली उच्चतम बोली का पिछला रिकॉर्ड तोड़ दिया। इस तरह यह चित्र दक्षिण एशियाई कला के लिए दूसरी सबसे महंगी कृति बन गयी है। हालांकि पहला स्थान 2017 में बिकी एक बौद्ध मूर्ति के पास है। पूनावाला ने इसे 'राष्ट्रीय धरोहर' बताते हुए कहा कि वे इसे समय-समय पर सार्वजनिक प्रदर्शन के लिए उपलब्ध कराते रहेंगे।

यशोदा और कृष्ण : भारतीय कला की पुनर्पहचान

यह कृति रवि वर्मा के करियर के उस शिखर काल की है, जिसमें पार्श्वचाल्य यथार्थवादी शैली और भारतीय पौराणिक विषयों का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। उल्लेखनीय है कि रवि वर्मा उन कलाकारों में शामिल हैं, जिन्हें 1972 के भारतीय कानून के तहत 'राष्ट्रीय धरोहर' घोषित किया गया है, जिसके कारण उनकी कृतियां देश से बाहर नहीं जा सकती हैं। विशेषज्ञों के अनुसार, यह बिक्री भारतीय कला बाजार के परिपक्व होने और देश के भीतर सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखने की बढ़ती प्रवृत्ति का सुखद संकेत है।



सुभन कुमार सिंह कलाकार/कला लेखक



रही हैं। उनके पिछे बालक कृष्ण का स्नेहपूर्ण आँगलन मातृत्व और बाल-क्रीड़ा की आत्मीयता को व्यक्त करता है। यहां कृष्ण कोई अलौकिक, चमत्कारिक देवता नहीं, बल्कि एक चंचल, स्नेहमय बालक के रूप में दिखाई देते हैं-यही रवि वर्मा की सबसे बड़ी विशेषता है, अर्थात् देवत्व का मानवीकरण। कला-इतिहास की दृष्टि से यह चित्र भारतीय भक्ति आंदोलन की उस परंपरा को दर्शय प्रदान करता है, जिसमें ईश्वर को एक सुलभ, प्रेमपूर्ण और मानवीय रूप में अनुभव किया जाता है। विदित है कि यशोदा-कृष्ण संबंध वैष्णव भक्ति परंपरा में 'माधुर्य' और

'वात्सल्य' भाव का प्रमुख उदाहरण है। इस चित्र में वात्सल्य रस की अभिव्यक्ति अत्यंत स्वाभाविक और प्रभावशाली है-यशोदा का शांत, ममत्वपूर्ण चेहरा और कृष्ण का स्नेहल स्पर्श इस भाव को मूर्त रूप देते हैं। तकनीकी दृष्टि से, चित्र में प्रकाश और छाया का सूक्ष्म उपयोग, शरीर की आयतनात्मकता और वस्त्रों की यथार्थपरक बनावट यूरोपीय अकादमिक शैली की देन है, किंतु विषय-वस्तु, भाव और प्रतीक पूरी तरह भारतीय हैं। गौ यहां केवल एक पशु नहीं, बल्कि 'गो-माता' के रूप में भारतीय सांस्कृतिक प्रतीक है- समृद्धि, पोषण और पवित्रता का संकेत।

अंततः 'यशोदा और कृष्ण' केवल एक चित्र नहीं, बल्कि भारतीय जीवन-दर्शन, भक्ति-संवेदना और सांस्कृतिक प्रतीकों का समन्वित रूप है। राजा रवि वर्मा ने इस पेंटिंग के माध्यम से यह सिद्ध किया कि पौराणिक कथाएं केवल अलौकिक नहीं, बल्कि मानवीय अनुभवों के माध्यम से भी उतनी ही प्रभावशाली ढंग से व्यक्त की जा सकती हैं। यही कारण है कि यह कृति आज भी सौंदर्य, भाव और अर्थ-तीनों स्तरों पर अत्यंत प्रासंगिक बनी हुई है।